P: ISSN No. 2231-0045 RNI No. UPBIL/2012/55438 VOL.-7, ISSUE-4, May-2019
E: ISSN No. 2349-9435 Periodic Research

# धर्मक्षेत्रे कुरूक्षेत्रे समवेताः युयुत्सवः

**अनिता सेनगुप्ता**
एसोसिएट प्रोफेसर,
संस्कृत विभाग,
ईश्वर शरण डिग्री कॉलेज,
इलाहाबाद, यू0 पी0
भारत

**सारांश**

श्रीमद्भगवद्गीता का प्रथम दृश्य युद्धभूमि का है। दोनों ओर स्वजनसम्बन्धी तथा आत्मीयजन खड़े हैं। धृतराष्ट्र संजय से, जिन्होंने महर्षि वेदव्यास द्वारा दूर–दर्शन एवं दूर–श्रवण रूप शक्तिद्वय अर्जित किया है, उनसे युद्ध का विवरण पूछते हुए कहते हैं–

धर्मक्षेत्रे कुरूक्षेत्रे समवेताः युयुत्सवः।
मामेकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय।।[1]

धर्मक्षेत्र कुरूक्षेत्र में एकत्र हुए योद्धओं ने युद्धारम्भ कैसे किया? किसका किससे युद्ध हुआ एवं किसके द्वारा किसका वध किया गया? धृतराष्ट्र के इन प्रश्नों तथा 'युयुत्सवः' पद में युद्ध का संपूर्ण दर्शन निहित है।

हम सभी जानते हैं कि युद्ध समाज के हित में नहीं होता, फिर भी इस आवश्यक बुराई या दोष में सर्वथा मुक्त रहना संभव भी नहीं है, किन्तु इसके दोष को कम करके इसके स्तर को उन्नत किया जा सकता है।

**मुख्य शब्द :** चातुर्वर्ण्य, स्वधर्म, धर्मयुद्ध, कीर्ति, स्वधर्मे निधनं श्रेयः, काम, क्रोध, युद्धाय कृतनिश्चयः।

**प्रस्तावना**

''सर्वभूतहिते रता : के सिद्धान्त अर्थात प्राणिमात्र के कल्याण का उद्घोष करने वाली भगवद्गीता का गायन भगवान श्री कृष्ण के द्वारा महाभारत के युद्ध के समय किया गया। महाभारतकालीन समाज अत्यन्त कलुषित हो गया था। वस्तुतः जहाँ घर्षण प्रारम्भ हो जाता है और जब इनमें ईर्ष्या–द्वेष, कटुता के भाव उत्पन्न होते हैं तब संघर्ष या युद्ध का जन्म होता है।

अर्जुन शत्रुपक्ष में अपने आत्मीय स्वजनों को देख, उनका वध करने की बात सोचकर अस्त्र–त्याग करने का अर्थात् युद्ध न करने का निश्चय कर लेते है, किन्तु भगवान् के द्वारा युद्ध की अपरिहार्यता को सिद्ध करने के लिए जिस प्रकार के कटुवचन प्रयोग किए गए–

क्लैव्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत् त्वप्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तपः।।[2]

ये वचनपूर्णतया दार्शनिक तथा आध्यात्मिक पृष्ठभूमि पर आधारित है, जो वर्णव्यवस्था के आदर्शों तथा स्वधर्मपालन की अनिवार्यता को प्रस्थापित करते हैं।

इस प्रसंग में यह जानना आवश्यक है कि वर्णव्यवस्था क्या है? श्रीकृष्ण अर्जुन को युद्ध के लिए प्रेरित करने के लिए वर्णाश्रम धर्म का आश्रय लेते हुए कहते हैं कि –चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।[3] अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों का समूह गुण व कर्मों के विभागपूर्वक मेरे द्वारा रचा गया है। चातुर्वर्ण्य शब्द से चतुर्वर्ण के पृथक्–पृथक् धर्म या गुण ही यहाँ अभिप्रेत हैं। यथा–ब्राह्मण का धर्म शम, दम, शौच, क्षमा, सरलता, ज्ञान–विज्ञानादि है, क्षत्रिय का धर्म वीरता, तेज, धैर्य, युद्ध से पलायन न करना, दान, स्वाभिमान आदि, वैश्य का धर्म कृषि, गोरक्षा, वाणिज्यादि तथा शूद्रों का धर्म तीनों वर्णों की सेवा है, जो ईश्वर द्वारा विहित है।

चतुर्वर्णों के गुणों की चर्चा करते हुए कहा गया है कि ब्राह्मण सत्वगुणप्रधान तथा शमदमादि से युक्त होता है। क्षत्रिय–रजोगुणप्रधान तथा युद्ध एवं प्रजा–रक्षण, पालनादि से युक्त होता है। वैश्य में रजस् तमो गुण की प्रधानता होती है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के गुण तथा कर्म का विचार कर संभवतः त्रेतायुग में वर्णविभाग हुआ था एवं समाजबद्ध मनुष्यों को चार वर्णों में विभक्त किया गया। महाभारत के शान्तिपर्व में भृगु–भरद्वाज संवाद के अन्तर्गत ऋषि भृगु ने भरद्वाज के प्रश्न के उत्तर में कहा था–

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्व ब्राह्ममिदं जगत्।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं कि कर्मभिर्वर्णतां मतम्।।[4]

अर्थात् यथार्थ में वर्णों का कोई भेद नहीं है, क्योंकि सम्पूर्ण पृथिवी ही ब्रह्मा के द्वारा सृष्ट होने पर ब्रह्ममयी थी, कालान्तर में कर्मानुसार अन्य वर्ण उत्पन्न हुए हैं। ब्राह्मण ही क्षत्रियभाव, वैश्यभाव, शूद्रभाव तथा वर्णान्तरभाव को प्राप्त हुए हैं।

इसी क्रम में श्री कृष्ण क्षात्रधर्म की दृष्टि से युद्ध को अर्जुन का 'स्वधर्म' कहकर उसका त्याग करना सर्वथा अनुचित बताते हुए, युद्ध करने की प्रेरणा देते हैं–''स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि'' (2/31)। युद्ध अर्जुन का स्वधर्म है अर्थात् अपने वर्ण तथा आश्रम के योग्य धर्म कर्तव्य है। धर्मानुसार अर्जुन को युद्ध का अवसर प्राप्त हो गया अतः 'युद्ध' शब्द को वर्णाश्रमधर्म का पालन करने के लिए की जाने वाली सभी क्रियाओं का उपलक्षण समझना चाहिए। क्षत्रियों के लिए धर्मयुद्ध के अतिरिक्त कुछ भी कल्याणकारी नही है–

धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते।[5]

महाभारत के शान्तिपर्व में क्षत्रियों के धर्म = कर्त्तव्य पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है–

1. क्षत्रियों के लिए युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त करना उचित माना गया है।[6]
2. क्षत्रिय वहीं है, जो युद्धभूमि में वीरगति को प्राप्त करे।[7]
3. उसके वीरगति प्राप्त करने पर दुःख नहीं करना चाहिए[8] और न श्राद्ध करना चाहिए।[9]
4. युद्धभूमि से भागने वाले क्षत्रिय नरकगामी होते हैं।[10]

ध्यातव्य है कि महाभारत युद्ध में क्षत्रियधर्म का घोर उल्लंघन न केवल सैनिकों ने किया अपितु महारथियों ने भी किया–भीष्मपर्व में पाण्डवों की सेना से कौरवों की सेना भयभीत होकर भाग खड़ी हुई। पुनः भीष्म के तीव्र प्रहार से पाण्डवों की सेना भी भाग खड़ी हुई।

वार्यमाणं च भीष्मेन द्रोणेन च महात्मना।
विद्रवत्येव तत्सैन्यं पश्चतो भीष्मद्रोणयोः।।[11]

इतना ही नहीं महारथी भीम के भय से दुर्योधन भी भागकर तालाब में छिप गया था।[12]

महाभारत का युद्ध कौरवों के लिए अधर्म का युद्ध था तो पाण्डवों के लिए धर्मयुद्ध था क्योंकि इस युद्ध का प्रारम्भ दुर्योधनादि की विद्वेषबुद्धि के कारण हुआ था। युधिष्ठिरादि पाण्डवों को उचित राज्याधिकार से वंचित करने के लिए ही उन लोगों ने इस युद्ध का आयोजन किया किन्तु पाण्डव तो अपने अधिकार की मांग के लिए युद्ध कर रहे थे, अतः उनके लिए धर्मयुद्ध था। जो क्षत्रिय इस प्रकार के धर्मयुद्ध का अवसर प्राप्त करते हैं, वे यथार्थ में भाग्यवान् होते हैं–

सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्।[13]

इस प्रकार के धर्मयुद्ध न करने पर गीता अनेक प्रकार के हानियों का भी वर्णन करती है–

1. स्वधर्म तथा यश को खोकर पाप को प्राप्त करोगे–
   अथ चेत्त्वमिमं धर्म्य संग्रामं न करिष्यसि।
   तत् स्वधर्म कीर्तिश्च हित्वा पापमवास्यसि।।[14]
2. सभी लोक दीर्घकाल तक तुम्हारी निन्दा करते रहेंगे। आदरणीय व्यक्ति के लिए निन्दा मृत्यु में भी अधिक कष्टदायक है–
   अकीर्तिञ्चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्।
   सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरच्यिते।।[15]
3. जो तुम्हें सम्मान की दृष्टि से देखते थे, उन लोगों के सामने तुम तुच्छ हो जाओगे।
   येषांच त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम्।[16]

तुम्हारे शत्रु लोग भी तुम्हारे बल–विक्रम की निन्दा करेंगे, उससे अधिक और दुःख की बात क्या हो सकती है–

निन्दन्तस्तव सामर्थ्य ततो दुःखकरं नु किम्।।[17]

अपने–अपने कर्त्तव्य कर्म का पालन करने में व्यक्ति को कभी पाप स्पर्श भी नहीं कर सकेगा– ''नैवं पापमवापस्यसि''।[18] भगवान अर्जुन को स्पधर्म समझाते हुए कर्मयोग का उपदेश देते हैं ताकि अर्जुन धर्म–अधर्म रूप कर्म के बन्धन से मुक्त हो जाए।[19] निष्काम कर्मयोग में प्रारम्भ किए गये कर्म का नाश नहीं है और कर्म न करने से होने वाला पाप भी नहीं होता। इस निष्काम कर्मयोग का अत्यल्प अनुष्ठान भी महान् भय से रक्षा करता है–

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।।[20]

गीता कहती है–''स्वधर्मे निधनं श्रेयः''[21]अर्थात् अपने वर्णाश्रम धर्म के अनुरूप कर्त्तव्य करते हुए प्राणोत्सर्ग कर देना श्रेयस्कर है। जो इन्द्रियजयी है अर्थात् जिन्होंने इन्द्रियों के राग–द्वेषों को वशीभूत कर लिया है, वे ही स्वधर्म पालन करने में समर्थ होते हैं।

भगवान् निष्काम होकर युद्ध करने की प्रेरणा देते हैं। निष्काम कर्म की प्रशंसा करते हुए कहते हैं–निष्काम कर्म करने वाला व्यक्ति तीनों गुणों से अतीत हो जाता है। सत्त्व, रज एवं तम इन तीनों गुणों के द्वारा प्रकृति जीव को संसार में बाँधकर रखती है, अतः अर्जुन! निस्त्रैगुण्य हो जाओ। सुख दुःखादि द्वन्द्वों से रहित होकर लोगों के कल्याण के लिए निष्काम करने में तत्पर रहो–

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्।।[22]

क्योंकि काम ही अधर्म का मूल कारण है–

काम एवं क्रोध एव रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्।।[23]

घृताहुति के द्वारा अग्नि की भाँति उपभोग से काम निरन्तर वृद्धि को प्राप्त करता है।[24]

महाभारत युद्ध का मूल कारण दुर्योधन की कामना ही है। काम विचार, बुद्धि को आवृत करके जीव को मोहित करता है।[25]

इन्द्रिय, मन तथा बुद्धि 'काम' के आश्रयस्थल कहे गए हैं। विषयों के पीछे दौड़ने वाली इन्द्रियों में मन जिसका भी अनुगमन करता है, वह इन्द्रिय उस असंगत मनुष्य की बुद्धि को वैसे ही हर लेती है जैसे वायु जल में नौका को।[26]

जो पुरूष समस्त कामनाओं को छोड़कर, वासना रहित होकर, ममता तथा अहंकार से रहित होकर कार्य करता है, वह चित्त की शांति प्राप्त करता है।[27] यही ब्रह्मस्वरूप में अवस्थिति है।[28]

स्वधर्म पालन में अर्जुन को लगाने के लिए भगवान् 'युद्ध' के पीछे निहित दर्शन को समझाने के

अनन्तर उसको युद्ध के लिए तैयार होने के लिए तैयार होने की आज्ञा देते हैं–

तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः।[29]

साथ ही आशीर्वाद भी देते हैं–

यशो लभस्व जित्त्वा शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धम्।[30]

धर्मयुद्ध के विजय की पूर्वघोषणा भी कर देते हैं–''युध्यस्व जितासि रणे सपत्नान्।''[31]

गीता में न केवल युद्ध सम्बन्धी दर्शन का ही उल्लेख प्राप्त होता है अपितु युद्ध सम्बन्धी व्यवस्था का भी उल्लेख मिलता है। रथ, वाहन, यानादि से युक्त सेना की युद्ध में अनिवार्य आवश्यकता होती है। अर्जुन का रथ बहुत ही विशाल व उत्तम है, धवल वर्ण के अश्व जुते हुए हैं–ततः श्वेतहयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितै।[32]

युद्ध में सेनापति का अत्यन्त महत्व रहता है। उसके बिना सेना व्यर्थ हो जाती है। स्वयं भगवान् का वचन है–सेनानीनामहं स्कन्दः।[33] प्रथमाध्याय के चौथे, पाँचवें, छठे तथा नौवें श्लोक में विविध सेनानायकों का परिचय भी दिया है।

गीता की युद्धनीति वैदिक युद्धनीति से पर्याप्त साम्य रखती है। वेदों में युद्धारम्भ के लिए उद्घोष तथा सेना को प्रोत्साहन देने के लिए वाद्यों के उपयोग का उल्लेख मिलता है। गीता में भी युद्धारम्भ के समय शंखध्वनि के पश्चात् एक साथ नगाड़े, मृदंग बजाने का उल्लेख मिलता है–ततः शंखाश्च भेर्यश्च पणववानकगोमुखाः।[34]

**साहित्यावलोकन**

''धर्मक्षेत्रे कुरूक्षेत्रे समवेताः युयुत्सवः'' भगवद्गीता के प्रथम अध्याय का यह पहला श्लोक भारतीय दर्शन के गूढ़ तथ्यों को अपने अन्दर समेटा हुआ है। प्रस्तुत लेख पूर्णरूप से नवीन है क्योकि आज तक मेरे दृष्टि पथपर इस विषय पर कोई भी शोध कार्य परिलक्षित नहीं हुआ। आशा करती हूँ यह नवीन होने के साथ–साथ समाजोपयोगी अवश्य होगा।

**निष्कर्ष**

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि गीता में वर्णित 'युद्ध नीति' के द्वारा भगवान् का यह आदेश है कि ईश्वर की आज्ञा समझकर निष्काम भाव से वर्णाश्रम–धर्म का पालन करते हुए कर्तव्य कर्मों को करें। यही भाव प्रदर्शित करने के लिए यहाँ 'युद्ध' करने को कहा गया है–तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।[35]

अर्जुन को दी गयी युद्ध की प्रेरणा धर्म से अधर्म को, नीति में अनीति को, शान्ति व क्षमाशीलता से अशान्ति व अखण्डता को, धैर्य से काम को एवं विनम्रता के द्वारा अहंकार को नष्ट करने की प्रेरणा देती है, जिस शिक्षा की आज हम सभी को आवश्यक है।

**अंत टिप्पणी**

*श्रीमद्भगवद्गीता, 1/1*
*श्रीमद्भगवद्गीता, 5/25*
*श्रीमद्भगवद्गीता, 2/3*
*श्रीमद्भगवद्गीता, 4/3*
*महाभारत, शान्तिपर्व, 188/10*
*श्रीमद्भगवद्गीता, 2/31*
*शान्तिपर्व, 97/28, 30–32*
*महाभारत, शान्तिपर्व, 97/23–27*
*महाभारत, शान्तिपर्व, 98/44*
*महाभारत, शान्तिपर्व, 98/45–47*
*महाभारत, शान्तिपर्व, 40–41*
*महाभारत, विराटपर्व, 65/13*
*श्रीमद्भगवद्गीता, 2/32*
*श्रीमद्भगवद्गीता, 2/33*
*श्रीमद्भगवद्गीता, 2/34*
*श्रीमद्भगवद्गीता, 2/35*
*श्रीमद्भगवद्गीता, 2/36*
*श्रीमद्भगवद्गीता, 2/38*
*श्रीमद्भगवद्गीता, 2/39*
*श्रीमद्भगवद्गीता, 2/40*
*श्रीमद्भगवद्गीता, 2/35*
*श्रीमद्भगवद्गीता, 2/45*
*श्रीमद्भगवद्गीता, 2/37*
*श्रीमद्भगवद्गीता, 3/39*
*श्रीमद्भगवद्गीता, 3/40*
*श्रीमद्भगवद्गीता, 2/67*
*श्रीमद्भगवद्गीता, 2/71*
*श्रीमद्भगवद्गीता, 2/72*
*श्रीमद्भगवद्गीता, 2/37*
*श्रीमद्भगवद्गीता, 11/33*
*श्रीमद्भगवद्गीता, 11/34*
*श्रीमद्भगवद्गीता, 1/14*
*श्रीमद्भगवद्गीता, 10/24*
*श्रीमद्भगवद्गीता, 1/13*
*श्रीमद्भगवद्गीता, 8/7*